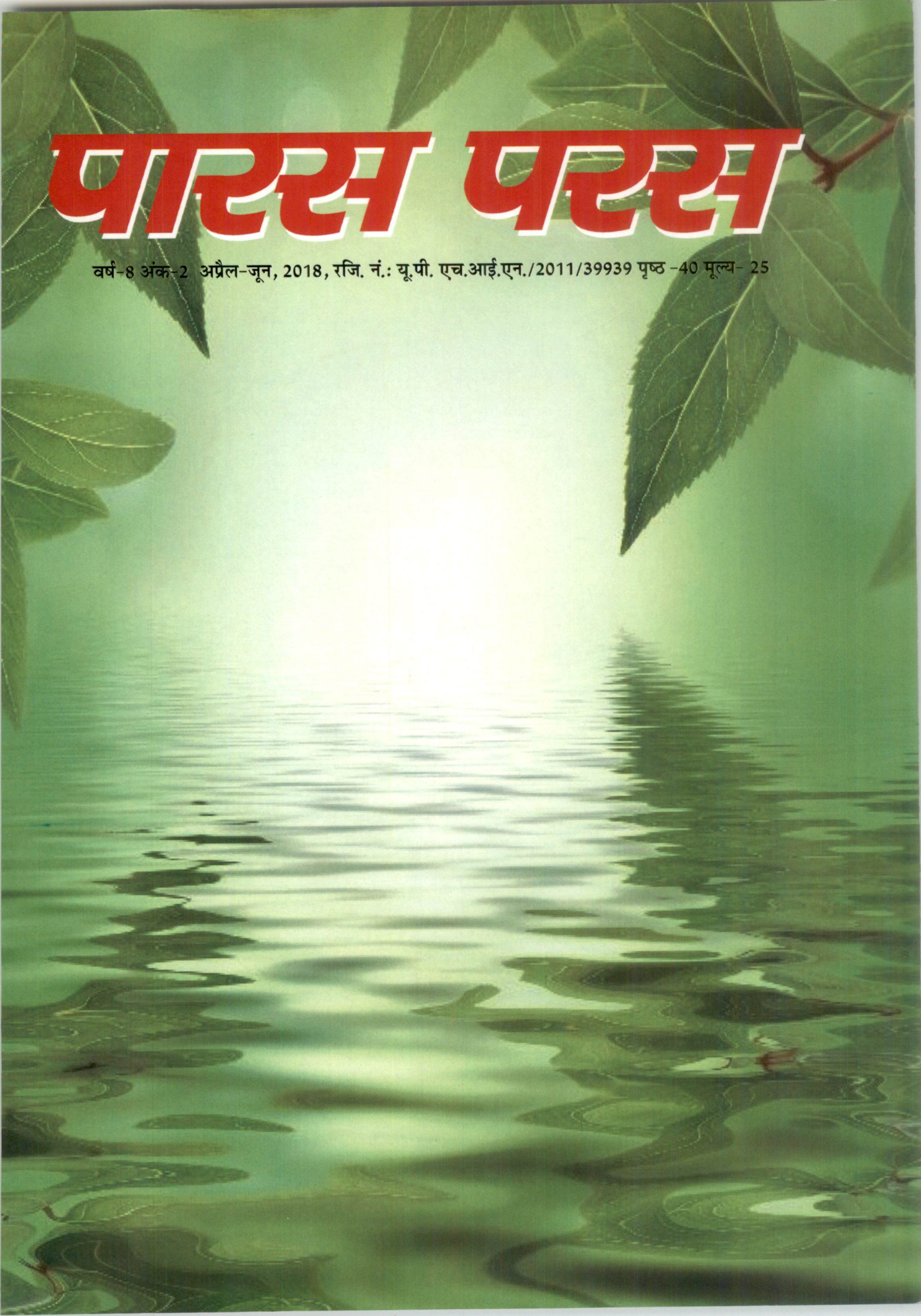

पारस परस

वर्ष-8 अंक-2 अप्रैल-जून, 2018, रजि. नं.: यू.पी. एच.आई.एन./2011/39939 पृष्ठ -40 मूल्य- 25

नागार्जुन

जन्म - 30 जून 1911, निधन - 05 नवम्बर 1998

अभी–अभी हटी है
मुसीबत के काले बादलों की छाया
अभी–अभी आ गयी–
रिझाने, दमित इच्छाओं की रंगीन माया
लगता है कि अभी–अभी
जरा–सी गफलत में होगा चौपट किया–कराया

ठिकाने तलाश रही है चाटुकारों की भीड़
शंख फूँकने लगे नये–नये कुवलयापीड़
फिर से पहचान लो, वाद्यवृन्दों में पुरानी गमक और मीड़
दिखाई दे गये हैं गीध के शावकों को अपने नीड़

वर्ष : 8 अंक : 2 अप्रैल-जून, 2018 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की विविध विधाओं
की त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक
डॉ. एल.पी. पाण्डेय

प्रधान संपादक
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित

संपादक
डॉ. अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक
सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय
538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग
अभ्युदय प्रकाशन
लखनऊ

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डॉ. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ उ.प्र. से मुद्रित तथा ए-1/15 रश्मि, खण्ड, शारदा नगर योजना, लखनऊ उ.प्र. से प्रकाशित।
सम्पादकः डॉ. अनिल कुमार

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
श्रद्धा सुमन		
अपने प्यारे बाबूजी	डॉ. अनिल कुमार पाठक	4
कालजयी		
बादल	पं० पारस नाथ पाठक 'प्रसून'	5
मैंने देखा	नागार्जुन	6
अकेले कंठ की पुकार	अजित कुमार	7
मातृ मूर्ति	पदुमलाल पन्नालाल बख्शी	8
समय के सारथी		
अर्चना से पूर्व होती अर्चना तुम्हारी है	श्री रमन	9
कभी तो खुलें कपाट	दिनेश कुमार शुक्ल	10
आपका चेहरा बयाँ है	विज्ञान व्रत	11
समय	विनोद कुमार शुक्ल	12
नीतिपरक दोहे	शिव ओम अम्बर	13
ऋतुराज वसन्त	शिवभजन 'कमलेश'	14
प्रतीक्षा	सिद्धेश्वर सिंह	15
कलरव		
कहाँ रहेगी चिड़िया	महादेवी वर्मा	16
चिड़िया और चुरूंगुन	हरिवंशराय बच्चन	17
सूरज का ब्याह	रामधारी सिंह दिनकर	18
आसमान में छेद कराते दादाजी	प्रभुदयाल श्रीवास्तव	19
ऐसा वर दो	त्रिलोक सिंह ठकुरेला	20
नारी स्वर		
बस यूँ ही	सुनीता बहल	21
सागर परोसा आपने	इंदिरा मोहन	22
तमसहरिणी, ज्योतिर्मय जय!	मृदुल कीर्ति	23
शाश्वत सत्य	पल्लवी मिश्रा	24
क्या है मेरी पहचान	वंदना शर्मा	25
न खींचो लक्ष्मण रेखाएँ	नीता	26
नवोदित रचनाकार		
नीति के दोहे	नरेंद्र दीपक	27
ओ शिखर पुरुष	गोपीनाथ	28
सन्देहों का कल	गोपीनाथ	29
बुद्धि	गोपेश शरण शर्मा 'आतुर'	30
श्रीहरि की मधुशाला	रोहित कुमार	31
मन कहता कुछ गीत लिखूँविजय रंजन		32
गोधूली की मधुवेला में	धीरेंद्र प्रसाद सिंह	33
एकात्म मानव इंदुशेखर		34
दिन कटे हैं धूप चुनते	अवनीश त्रिपाठी	35
पहाड़ी के पत्थर	अनिल मिश्र	36
जीवन बीत गया	राजेन्द्र वर्मा	37
तुम जाने-पहचाने	भीम प्रसाद प्रजापति	38
बार-बार बदला लेगी	शैलेन्द्र कुमार भाटिया	39
कल बीत गया मत याद करो।	कृष्ण कुमार वर्मा	40

श्रम की महत्ता

श्रम दिवस के अवसर पर विभिन्न आयोजनों पर सम्मिलित होने का आमन्त्रण देखते हुए बचपन में पढ़ी गयी श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध की प्रेरक कविता 'कर्मवीर' का स्मरण हो आया। इसकी कुछ पंक्तियाँ यथावत याद हैं :–

"पर्वतों को काटकर सड़के बना देते हैं वे।
सैकड़ों मरुभूमि में नदियाँ बहा देते हैं वे।।
गर्भ में जलराशि के बेड़ा चला देते हैं वे।
जंगलों में भी महा मंगल रचा देते हैं वे।।

काम को आरम्भ करके यों नहीं जो छोड़ते।
सामना करके नहीं जो भूलकर मुख मोड़ते।।
जो गगन के फूल बातों से वृथा नहीं तोड़ते।
सम्पदा दामन से करोड़ो की नहीं जो जोड़ते।।

सब तरह से आज जितने देश हैं फूले–फले।
बुद्धि, विद्या धन वैभव के हैं जहाँ डेरे डले।।
वे बनाने से उन्हीं के बन गए इतने भले।
वे सभी हैं हाथ से ऐसे सपूतों के पले।।"

उक्त पंक्तियों को उद्धृत करने का तात्पर्य मात्र इतना है कि कर्म का महत्व सर्वोपरि है। बिना किसी आलस्य के कुशलतापूर्वक कर्म करते हुए अभीप्सित की प्राप्ति करने वाला समाज, राश्ट्र व मानवता कीप्रगति, उन्नति में भागीदार व्यक्ति ही कर्मवीर है। दूसरे रूप में यह कर्म ही श्रम है और कर्मवीर श्रमिक है। सामान्यतः श्रम से अर्थ केवल भाारीरिक श्रम तक ही संकुचित हो जाता है परन्तु व्यापक अर्थ में श्रम के अन्तर्गत भाारीरिक श्रम तथा मानसिक श्रम सम्मिलित है।

कहते हैं कि श्रम का कोई विकल्प नहीं है यानि बिना श्रम या उद्यम के किसी कार्य की सिद्धि नहीं होती। मात्र किसी चीज को केवल मन के चाह लेने से ही उसकी वास्तविक प्राप्ति नहीं हो सकती। कहा गया है कि

"उद्यमेनहि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।"

हालांकि तमाम भाग्यवादी लोग मानते हैं कि जो भाग्य में लिखा है वह मिल जायेगा उसके लिए श्रम की क्या आवश्यकता है? वे ऐसे अनेक दृष्टान्त उल्लिखित करते हैं जहां समाज के कतिपय ऐसे लोग जो कोई उद्यम, श्रम, कर्म किये बिना ही केवल दूसरों के श्रम से लाभ अर्जित कर समृद्धशाली होते रहते हैं। वे मलूकदास की कही गयी बात को भी अपनी बातों के समर्थन में उद्धृत करते हैं :–

'अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम।।'

कदाचित वे इसका भाव नहीं समझते। इसका तात्पर्य कदापि यही नहीं है कि किसी को कर्म नहीं करना चाहिए या कर्म का महत्व नहीं है। अजगर भी किसी शिकार को पकड़ने के लिए प्रयास करता है और पंछी भी एक तिनके, एक दाने के लिए बड़ी –बड़ी उड़ान भरने के साथ ही जगह–जगह विचरण करता रहता है। इसलिए जहाँ तक इसका भाव मैं समझ सका हूँ वह यह है कि दीन, अंकिचन को भी संरक्षण देने वाले और उनका ख्याल रखने वाले प्रभु हैं और कोई भी असहाय नहीं है।

इसी सन्दर्भ में यह भी कहना प्रासंगिक है कि ऐसे लोगों को उस कर्मवीर /श्रमिक के श्रम का महत्व नहीं मालूम है जिन्हें बिना श्रम किये हुए लाभार्जन की आदत पड़ गयी है। वैसे भी किसी वस्तु का मूल्य वही समझ सकता है जो उसके सृजन और उत्पादन से जुड़ा हो। श्रम का महत्व ऐसे उपभोगकर्ता को भी भाायद नहीं मालूम होता जिसका उसके उत्पादन एवं सृजन में कोई योगदान नहीं होता हो। क्योंकि वह तो मात्र उपभोग करने वाला होता है। श्रम का अत्यन्त व्यापक स्वरूप है क्योंकि कही यह श्रम मूल्य/प्रतिफल के बदले में किया जाता है और कहीं यह जीविका व पेट भरण के लिए भी होता है।

श्रम ही सृजन एवं सर्जना का मूलाधार भी है क्योंकि बिना इसके किसी भी सृजन की कल्पना नहीं की जा सकती है। इसीलिए अपने श्रम से कुछ सृजन करने वाला ही इसका वास्तविक महत्व व मूल्य जानता है कि जैसे एक चिड़िया उस श्रम का मूल्य समझती है जो तिनके–तिनके चुनकर घोसला बनाती है मगर जो आँधियों में टूट जाते हैं या उसे कोई उजाड़ देता है। सृजन का मूल्य वही व्यक्ति समझ सकता हैं जो मिट्टी, ईंट–रोड़े जोड़कर घरौंदा बनाता है किन्तु उसे उजाड़ दिया जाता है या जला दिया जाता है। उस मजदूर को ही श्रम का मूल्य मालूम है जिसे अथक परिश्रम के बाद भी उचित मूल्य व आदर नहीं मिलता।

श्रम का वास्तविक मूल्य केवल मजदूरी नहीं है बल्कि उस सृजन का आदर व सम्मान करना भी है क्योंकि उत्पादन एवं सृजन में भाारीरिक श्रम के साथ ही मानसिक श्रम एवं आत्मिक लगाव व जुड़ाव भी भाामिल है।

पूर्व की भाँति सभी सुधी पाठकों की स्नेहिल छाया में यह पत्रिका अपने पथ पर अग्रसर हैं। सभी कवियों, संस्थाओं के परोक्ष–अपरोक्ष योगदान के प्रति आभार व्यक्त करते है।

श्रम दिवस की अनन्त शुभकामनाओं के साथ,

डॉ० (अनिल कुमार)

अपने प्यारे बाबूजी

- डॉ. अनिल कुमार पाठक

तकलीफों के बोझ तले, सूना आँगन, दुखिया बचपन,
हर पल पाई थी पीड़ा, हर पल पाई थी अड़चन।
फिर भी हँसते रहे सदा, थे सबसे न्यारे बाबूजी।
अपने प्यारे बाबूजी।।

कभी मिला वि वासघात, कभी रुकावट औ' धोखा,
काँटों भरी राह थी उनकी, सबने रोका, सबने टोका।
फिर भी चलते रहे सदा, आँखों के तारे बाबूजी।
अपने प्यारे बाबूजी।।

निर्भीक सदा, वे डिगे नहीं, झेले कश्टों के रेले।
जीवन के छूट झंझावातों में गए सारे मेले।
फिर भी बढ़ते रहे सदा, हम सबके प्यारे बाबूजी।
अपने प्यारे बाबूजी।।

सर्दी–गरमी, धूप–छाँव में, बिन संगी, बिन साथी के,
टेढ़ी–मेढ़ी पगडंडी पर, बिना सहारे, लाठी के।
फिर भी चलते रहे सदा, कभी न हारे बाबूजी।
अपने प्यारे बाबूजी।।

❖❖❖

बादल

– पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

अब न तुम्हें जाने दूँगा बादल।
चंपे की नव–पंखुड़ियों पर,
बेला की मधुमय कलियों पर,
बाँध सुरभि की जंजीरों से,
और झँकोरुँगा तुमको बरसाऊँगा बादल!
अब न तुम्हें जाने दूँगा बादल!

चंचल सरिता के मृदुजल पर,
तट के सूखे सिकता कण पर,
उलझा कर पथ की दूबों में,
और लहर पर तुमको लहराऊँगा बादल!
अब न तुम्हें जाने दूंगा बादल!

कभी उठा कर तुंग श्रृंग पर,
कभी झुका कर सागर तट पर,
बैठा कर तुमको वातचक्र पर,
गाऊँगा मैं और नचाऊँगा तुमको बादल!
अब न तुम्हें जाने दूँगा बादल!!

❖❖❖

मैंने देखा

– नागार्जुन

मैंने देखा
दो शिखरों के अन्तराल वाले जँगल में
आग लगी है ...

बस अब ऊपर की मोड़ों से
आगे बढ़ने लगी सड़क पर
मैंने देखा रू
धुआँ उठ रहा
घाटी वाले
खण्डित–मण्डित अन्तरिक्ष में
मैंने देखा रू आग लगी है
दो शिखरों के अन्तराल वाले जँगल में।

मैंने देखा रू शिखरों पर
दस–दस त्रिकूट हैं
यहाँ–वहाँ पर चित्र–कूट हैं
दाएँ–बाएँ तलहटियों तक
फैले इनके जटा–जूट हैं
सूखे झरनों के निशान हैं
तीन पथों में बहने वाली
गँगा के महिमा–बखान हैं
दस झोपड़ियाँ, दो मकान हैं

इनकी आभा दमक रही है
इनका चूना चमक रहा है
इनके मालिक वे किसान हैं
जिनके लड़के मैदानों में
युग की डाँट–डपट सहते हैं
दफ्तर में भी चुप रहते हैं ।

❖❖❖

अकेले कंठ की पुकार.

– अजित कुमार

गीत जो मैंने रचे हैं,
वे सुनाने को बचे हैं।

क्योंकि,
नूतन जिन्दगी लाने,
नई दुनिया बसाने के लिए
मेरा अकेला कंठ स्वर काफी नहीं है।
इस तरह का भाव मुझ को रोकता है।
शून्य, निर्जन पथ, अकेलापन,
सभी कुछ अजनबी बन
मुखरता मेरी न सुनता
टोकता है।

इसलिए मुझको न पथ के बीच छोड़ो,
बेरुखी से मुँह न मोड़ो।
हो न जाऊँ बेसहारे ,
इसलिए तुम भूलकर वैषम्य सारे ।
ताल सुर लय का नया सम्बन्ध जोड़ो।
ओ प्रगतिपन्थी! जरा अपने कदम इस ओर मोड़ो ।

राग आलापो, बजाओ साज ,
कुछ ऊँची करो आवाज।
मेरा साथ दो।
यह दोस्ती का हाथ लो।
फिर मैं तुम्हारे गीत गाऊँ,
और तुम मेरे
कि जिससे रात जल्दी कट सके ,
यह रास्ता कुछ घट सके

हम जानते हैं
विगह दल तक साथ देंगे
भोर होते ही, उजेरे... मुँह अंधेरे।

❖❖❖

मातृ मूर्ति

- पदुमलाल पन्नालाल बख्शी

क्या तुमने मेरी माता का देखा दिव्याकार,
उसकी प्रभा देख कर विस्मय–मुग्ध हुआ संसार ।

अति उन्नत ललाट पर हिमगिरि का है मुकुट विशाल,
पड़ा हुआ है वक्षस्थल पर जह्नुसुता का हार।

हरित शस्य से श्यामल रहता है उसका परिधान,
विन्ध्या–कटि पर हुई मेखला देवी की जलधार।

भव्य भाल पर शोभित होता सूर्य रश्मि सिंदूर,
पाद पद्म को प्रक्षालित है करता सिंधु अपार।.

सौम्य वदन पर स्मित आभा से होता पुष्प विराम,
जिससे सब मलीन पड़ जाते हैं रत्नालंकार ।

दयामयी वह सदा हस्त में रखती भिक्षा–पात्र,
जगधात्री सब ही का उससे होता है उपकार ।

देश विजय की नहीं कामना आत्म विजय है इष्ट ,
इससे ही उसके चरणों पर नत होता संसार ।

❖❖❖

अँधेरी रात है किरणें सुबह की लाओ भी

- अभिनव अरुण

अँधेरी रात है किरणें सुबह की लाओ भी
सितारों स्वप्न सुनहरे मुझे दिखाओ भी

भला भला सा मुहूरत निकल न जाए कहीं,
उनींदे सूर्य को शबनम छिड़क जगाओ भी

निकल भी आओ कभी यादों के घरौंदे से,
महकती धूप में साँकल कभी बजाओ भी

फलक का प्यार है पर्वत से गिर रहा झरना,
उदास क्यों हो जमीं तुम नजर उठाओ भी

हमें यकीन है तुम बेवफा नहीं लेकिन,
हमारे वास्ते छत पर निकल के आओ भी

नजारे देख रहा है जमाना उल्फत का,
हमारा नाम लिखो रेत पर मिटाओ भी

नहीं है हित में किसी के, कि नाव तट पे रहे,
भंवर का एक नया सिलसिला चलाओ भी

मैं चाहता हूँ गजल में जिगर का खून भी हो,
मुझे रकीब से मेरे कभी मिलाओ भी

सियाह रात में देखो नक़ाब को हटते,
कभी चिराग जलाओ कभी बुझाओ भी।।

❖❖❖

कभी तो खुलें कपाट

- दिनेश कुमार शुक्ल

कहना सुनना
और समझ पाना
संभव हो
इसीलिये तो
रची गई थी सृष्टि

इसीलिये
छत की मुंडेर तक
आतीं आम–नीम की डालें
झाँक सकें आँगन में
जानें
घर में बंद बहू का
सुख–दुख

इसीलिये
तो आते झोंके
बहती हवा, झूमती डालें
झरते हैं पत्ते आँगन में,
दुख से लड़कर जब थक जाती
उन पत्तों पर लिखती पाती
बहू,
हवा फिर उन्हें उड़ाती
उसके बाबुल तक ले जाती

इसीलिये
आती है कविता
भीतर पैठे
उन जगहों को छुए
जहाँ तक
नहीं पहुँच पाती हैं डालें
नहीं पहुँच पाता प्रकाश
या पवन झकोश
संदेशों के पंछी भी
पर मार न पाते
जिन जगहों पर
घुस कर गहन अँधेरे में भी
सभी तरह के
बन्दीगृह की काली चीकट दीवारों पर
कविता भित्तिचित्र लिखती है
लोहे के हों
या तिलिस्म के
सारे वज्र–कपाट तोड़ती

इसीलिये
धारा जैसी आती है कविता
प्रबल वेग से।

❖❖❖

आपका चेहरा बयाँ है

– विज्ञान व्रत

एक :–
जब तक उनके पास रहा,
मैं हूँ ये अहसास रहा।

सब खोकर भी क्यों मुझको,
पाने का आभास रहा।

आखिर वो लौटोगे ही,
मुझको यह विश्वास रहा।

दुनियादारी जीकर भी,
मुझमें इक संन्यास रहा।

राम अयोध्या लौट गए,
सीता को बनवास रहा।

दो :–
जो सदा से ला–मका है,
वो मुझे रखता कहाँ है।

जो नहीं महफूज खुद ही,
क्यों हमारा पासबा है।

तू अगर मंजिल नहीं तो,
फिर मुझे जाना कहाँ है।

मिल चुका हूँ आपसे पर,
आपको देखा कहाँ है।

आप बोलें या न बोलें,
आपका चेहरा बया है!

तीन :–
पहले सोचा खत लिखूँ,
फिर सोचा घर फोन करूँ।

हाँ बिटिया! हाँ! मैं पापा,
कैसी हो? मैं अच्छा हूँ।

बात कराओ मम्मी से ,
हाँ, कह दो मैं फोन पे हूँ।

हाँ जी! सब ठीक तो है न,
बस मन था कुछ बात करूँ।
काम बचा है थोड़ा सा,
बस आने ही वाला हूँ।

अच्छा फिर बात करूँगा,
ओ.के. अब मैं रखता हूँ।

चार :–
मुसकराना चाहता हूँ,
क्या दिखाना चाहता हूँ।

याद उनको भी नहीं जो,
वो भुलाना चाहता हूँ।

जिस मका में हूँ ,उसे अब,
घर बनाना चाहता हूँ।

कर्ज जो मुझ पर नहीं है,
क्यों चुकाना चाहता हूँ।

आपकी जानिब से खुद को,
आजमाना चाहता हूँ।

❖❖❖

समय

- विनोद कुमार शुक्ल

मुझसे अपने होने का सवाल नहीं बना।
कि होश इस तरह अब तक कैसे बचा ।
सब जा रहे थे,
साथ उनके मैं भी तो चला
हो सकता है कुछ धीरे चला
जुड़ने से रहा

छूटा रहा इस तरह।
कि आखिर में सबसे घटते–घटाते,
घट गया अपने से।
जबकि मुझे और मुझको,
जुड़ना और जोड़ा जाना था।
एक–एक और सबसे,
हासिल कुछ हुआ नहीं।

अँधेरे की काली स्लेट पट्टी की,
इतनी काली रात पहले देखी नहीं।
खिन्न, छिन्न–भिन्न चिन्ह हूँ,
अपने में कुढ़ता हुआ,
मक्खी की भिन–भिन हूँ।

❖❖❖

नीतिपरक दोहे

- शिव ओम अंबर

आगम-निगम बने सदाशिव के भवासोच्छ्वास।
अश्रु बना रुद्राक्ष तो, अट्टहास कैलास।।

प्यास-त्रास-उपवास का है अब-जग इतिहास।
हास-हुलास-विलास की, परिणति इस निःश्वास।।

एक-एक रज कण यहाँ, है रहस्यमय ग्रंथ।
बेहद जटिल निगूढ़ है, जग-जीवन का पंथ।।

दूर–दूर से ही सुभग श्री संयुक्त महान्।
तैलचित्र हैं वस्तुतः यहाँ सभी इनसान।।

ठहरी तो कजला गया निर्मल धवल चरित्र।
जब तक रही प्रवाह में, थी, जल-राशि पवित्र।।

क्षिति-जल-पावक-वायु-नभ का प्रगाढ़ आश्लेश।
व्यक्ति–व्यक्ति है वस्तुतः संवेगों का भलेश।।

कृति के हर किरदार में व्यंजित है कृतिकार।
कविता का सत्कार ही, है, कवि का सत्कार।।

निस्पृहता निर्लेपता नवता का अधिवास।
यायावर पर्जन्य है मूर्तिमंत संन्यास।।

हद में अनहद बाँधने की अक्षरा उमंग।
कविता वसुधा पे सुधा की सम्पूर्त तरंग।।

अंधकार के पृष्ठ पर अंकित ज्योतिर्मंत्र।
हर दीपक है, स्वस्तिकर श्रेयस्कर श्रीयंत्र।।

है विराटनगरी सदृश दिल्ली का परिवेश।
पार्थ यहाँ धारे मिला वृहन्नला का वेष।।

बना रहीं गुणतंत्र तो ये असफल गणतंत्र।
शनैः–शनैः बन जाएगा खुद ही गणिकातंत्र।।

अर्थहीन हैं शिष्टता-सहृदयता-सौजन्य।
जो है जितना वन्य वो है उतना मूर्धन्य।।

मंच कर रहा है, विकृति को साष्टांग प्रणाम।
अर्चा के आसन हुए उद्दंडों के नाम।।

कवि वन-वन भटकाव का इक करुणार्द्र निबंध।
कविता विश्व-विमोहिनी कस्तूरी की गंध।।

❖❖❖

ऋतुराज वसन्त

- शिवभजन 'कमलेश'

मलय गन्धमय गलियाँ,
सिहर उठीं सब कलियाँ,
पाकर मादक परस मदन का, पुलकित दिशा–दिगन्त।
आ गया है, ऋतुराज वसन्त।।
फूलों लदी लताएँ झूमीं,
लिए पराग हवाएँ घूमीं।
विप्रलम्भ को मुँह मटकाकर,
भ्रमरों ने पाँखुरियाँ चूमीं।
कच्ची उमर इमलियाँ,
लिपटी हुईं पिपलियाँ,
मदिर सुरभि में झूम रहे हैं, साधक, सन्त–असन्त।
आ गया है ऋतुराज वसन्त।।
महुओं ने रस–घट छलकाए,
बेल–विटप लट्टू लटकाए।
ऐसा असर पड़ा आमों पर,
ऋतुपति के आगे बौराए।
रीझी देख जमुनिया,
खुश टेसू की दुनिया,
गुड़हल, सेंमल संग, पलाश भी, लगते बाँके कन्त।
आ गया है ऋतुराज वसन्त।।
सरसों पीली सेज बिछाए,
बहुरंगी तितली ललचाए।
कुटुक–कुटुक कर रही गिलहरी,
कोयल पंचम सुर में गाए।
अरुणिम हुईं पुतलियाँ,
सिहरन–भरी उँगलियाँ,
शकुन्तला मधु ऋतु बन आई, मनसिज बन दुष्यन्त।
आ गया है ऋतुराज वसन्त।।

❖❖❖

प्रतीक्षा

सिद्धेश्वर सिंह

धूप के अक्षर
अँधेरी रात की काली स्लेट पर
आसानी से लिखे जा सकते हैं
कोई जरूरी नहीं कि तुम्हारे हाथों में
चन्द्रमा की चॉक हो ।

इसके लिए मिट्टी ही काफी है
वही मिट्टी
जो तुम्हारे चेहरे पर चिपकी है
तुम्हारे कपड़ों पर धूल की शक्ल में जिन्दा है
तुम्हारी सुन्दर जिल्द वाली किताबों में
धीरे–धीरे भर रही है।

तुम सूरज के पुजारी हो न ?
तो सुनो
यह मिट्टी यूँ ही जमने दो परत–दर परत ।

देख लेना
किसी दिन कोई सूरज
यहीं से, बिल्कुल यहीं से
उगता हुआ दिखाई देगा
और मुझे तनिक भी आश्चर्य नहीं होगा ।

❖❖❖

कहाँ रहेगी चिड़िया

- महादेवी वर्मा

आँधी आई जोर–शोर से,
डाली टूटी है झकोर से,
उड़ा घोंसला बेचारी का,
किससे अपनी बात कहेगी?
अब यह चिड़िया कहाँ रहेगी ?

घर में पेड़ कहाँ से लाएँ?
कैसे यह घोंसला बनाएँ?
कैसे फूटे अंडे जोड़ें?
किससे यह सब बात कहेगी,
अब यह चिड़िया कहाँ रहेगी ?

कोयल

डाल हिलाकर आम बुलाता
तब कोयल आती है।
नहीं चाहिए इसको तबला,
नहीं चाहिए हारमोनियम,
छिप–छिपकर पत्तों में यह तो
गीत नया गाती है!

चिक–चिक् मत करना रे निक्की,
भौंक न रोजी रानी,
गाता एक, सुना करते हैं
सब तो उसकी बानी।

आम लगेंगे इसीलिए यह–
गाती मंगल गाना,
आम मिलेंगे सबको, इसको–
नहीं एक भी खाना।

सबके सुख के लिए बेचारी,
उड़–उड़कर आती है,
आम बुलाता है, तब कोयल–
काम छोड़ आती है।

❖❖❖

चिड़िया और चुरूँगुन

- हरिवंशराय बच्चन

छोड़ घोंसला बाहर आया,
देखी डालें, देखे पात,
और सुनी जो पत्ते हिलमिल,
करते हैं आपस में बात–
माँ, क्या मुझको उड़ना आया?
नहीं, चुरुँगुन, तू भरमाया

डाली से डाली पर पहुँचा,
देखी कलियाँ, देखे फूल,
ऊपर उठकर फुनगी जानी,
नीचे झूककर जाना मूल–
माँ, क्या मुझको उड़ना आया?
नहीं, चुरुँगुन, तू भरमाया

कच्चे–पक्के फल पहचाने,
खाए और गिराए काट,
खाने–गाने के सब साथी,
देख रहे हैं मेरी बाट–
माँ, क्या मुझको उड़ना आया?
नहीं, चुरुँगुन, तू भरमाया

उस तरू से इस तरू पर आता,
जाता हूँ धरती की ओर,
दाना कोई कहीं पड़ा हो
चुन लाता हूँ ठोक–ठठोर
माँ, क्या मुझको उड़ना आया?
नहीं, चुरुँगुन, तू भरमाया

मैं नीले अज्ञात गगन की
सुनता हूँ अनिवार पुकार
कोई अंदर से कहता है
उड़ जा, उड़ता जा पर मार
माँ, क्या मुझको उड़ना आया?

आज सुफल हैं तेरे डैने,
आज सुफल है तेरी काया

❖❖❖

सूरज का ब्याह

– रामधारी सिंह दिनकर

उड़ी एक अफवाह, सूर्य की शादी होने वाली है,
वर के विमल मौर में मोती उषा पिरोने वाली है।

मोर करेंगे नाच, गीत कोयल सुहाग के गाएगी,
लता विटप मंडप–वितान से वंदनवार सजाएगी!

जीव–जन्तु भर गए खुशी से, वन की पाँत–पाँत डोली,
इतने में जल के भीतर से एक वृद्ध मछली बोली–

''सावधान जलचरों, खुशी में सबके साथ नहीं फूलो,
ब्याह सूर्य का ठीक, मगर, तुम इतनी बात नहीं भूलो।

एक सूर्य के ही मारे हम विपद कौन कम सहते हैं,
गर्मी भर सारे जलवासी छटपट करते रहते हैं।

अगर सूर्य ने ब्याह किया, दस–पाँच पुत्र जन्मायेगा,
सोचो, तब उतने सूर्यों का ताप कौन सह पाएगा?

अच्छा है, सूरज क्वाँरा है, वंश विहीन, अकेला है,
इस प्रचंड का ब्याह जगत की खातिर बड़ा झमेला है।''

❖❖❖

आसमान में छेद कराते दादाजी

– प्रभुदयाल श्रीवास्तव

गरम दूध मुझको पिलवाते दादाजी।
काजू या बादाम खिलाते दादाजी।

थाली में भर–भर कर चंदा की किरणें,
मुझे चाँदनी में नहलाते, दादाजी।

कभी कभी जब मैं जिद पर अड़ जाता हूँ,
तोड़ गगन से लाते तारे, दादाजी।

मुझको जब भी लगती है ज्यादा गरमी,
बादल से सूरज ढकवाते, दादाजी।

नहीं बूँद भर पानी जब होता घर में,
आसमान में छेद कराते, दादाजी।

फिर वे मेघों को आदेश दिया करते,
जब चाहे जब जल गिरवाते दादाजी।

❖❖❖

ऐसा वर दो

- त्रिलोक सिंह ठकुरेला

भगवन् हमको ऐसा वर दो।
जग के सारे सद्गुण भर दो

हम फूलों जैसे मुस्कायें,
सब पर प्रेम सुगंध लुटायें,
हम परहित कर खुशी मनायें,
ऐसे भाव हृदय में भर दो।
भगवन् हमको ऐसा वर दो

दीपक बनें, लड़े हम तम से,
ज्योतिर्मय हो यह जग हम से,
कभी न हम घबरायें गम से,
तन–मन सबल हमारे कर दो।
भगवन हमको ऐसा वर दो

सत्य मार्ग पर बढ़ते जायें,
सबको हीं सन्मार्ग दिखायें,
सब मिलकर जीवन फल पायें,
ऐसे ज्ञान, बुद्धि से भर दो।
भगवन, हमको ऐसा वर दो

❖❖❖

बस, यूँ ही

- सुनीता बहल

हमें तो मिल जाती है खुशी, बस, यूँ ही
चिड़िया की चीं–चीं आवाज में,
नई सुबह की आगाज से,
हवाओं की अठखेलियों में,
पानी की बूँदें हों जब हथेलियों पे।
हमें तो मिल जाती है खुशी, बस यूँ ही।

फूलों की नई खिलती कलियों में,
जब बच्चे खेलें मस्ती में गलियों में।
पत्तों की सर–सर सरसराहट में,
बच्चों की भोली सी मुसकराहट में।
हमें तो मिल जाती है खुशी, बस यूँ ही।

नीले आकाश की नीलिमा में,
घने बादलों की कालिमा में,
गगनचुंबी पहाड़ों की ऊँचाइयों में,
पाताल तलाशती गहरी खाइयों में।

बस सोचने की बात है,
खुशी हरदम हमारे पास है।
अंतर्मन की आवाज को सुनो,
अपनी खुशियाँ खुद ही चुनो।

❖❖❖

सागर परोसा आपने

- इंदिरा मोहन

चपल चंचल लहर अनगिन,
कर रहीं अठखेलियाँ मिल।
भ्रमित अँजुरी तट खड़ी,
सागर परोसा आपने।

फेन जैसे, शुभ्र मोती,
धवल धारा ने सजाए।
कुछ उभरते, कुछ बिखरते,
जल सहज बस झिलमिलाए।

मुसकराए मुक्त मन से,
शोर का उल्लास अनुपम।
गर्जना स्वर, लय सधी,
सागर परोसा आपने।

अथक चलती, मौन बहती,
गति दिखाई दे रही बस।
हर्ष का संवाद मोहक,
लक्ष्य की पहचान बरबस।

इष्ट के प्रति पूर्ण अर्पित,
किरण संग नभ में विचरती।
प्यास धरती की मिटी,
सागर परोसा आपने।

तुष्टि का संतोष उर में,
नयन बोझिल अधखुले से।
शब्द अस्फुट अधर झरते,
एक मन दो तन मिले से।

तृप्ति का आस्वाद उत्स,
बोध के शुभ द्वार खोले।
प्राण–प्राणों में बसे,
सागर परोसा आपने।

❖❖❖

तमसंहरिणी, ज्योतिर्मय जय!

– मृदुल कीर्ति

सरस्वती माँ! वागेश्वरी जय, विभूति वीणावादिनी जय!

शारदे माँ! सुमति सद्ज्ञान, संचरित तू ही करती है।
ज्ञान की ज्योति से ब्रह्मांड प्रकाशित तू ही करती है।

जगत् आद्यंतव्यापिनी जय,
तमसंहरिणी, ज्योतिर्मय जय!
धवलवसना, हंसासिनी जय,
कमलनयनी, कमलासिनी जय!

प्राणियों के कंठों में स्वर समाहित तू ही करती है।
शारदे माँ! धी, प्रज्ञा, ज्ञान, संचरित तू ही करती है।

सच्चिदानंद स्वरूप अनूप,
सत्यविद्यामय शब्दस्वरूप।
ऋतंभरी वाणी का ऋतरूप,
ज्ञान का आदि मूल प्रारूप।

सृष्टि में वाणी सिद्धप्रवाह प्रवाहित तू ही करती है।
शारदे माँ! धी–प्रज्ञा से जगत् अनुशासित करती है।

प्रभाधृति, मेधा, श्रीशुभनाम,
ज्ञान की मूलशक्ति, सुखधाम।
काव्य, स्वर, छंद, व्याकरण, ज्ञान,
कवित्त, संगीत, अलंकृत गान।

ब्रह्माणी, वागीषा, तू प्राण प्रतिष्ठित इनमें करती है।
मूढ़ को गूढ कवि कालीदास माँ तू ही करती है।

वंदनं कोटि–कोटि प्रणाम, विश्व को मुखरित करती है।
वंदनं पुनि–पुनि कोटि प्रणाम कि जड़ता तू ही हरती है।

❖❖❖

शाश्वत सत्य

पल्लवी मिश्रा

जिन्दगी में कुछ पाने के लिए खोना भी जरूरी है।
जिन्दगी में मुस्कुराने के लिए रोना भी जरूरी है।
तुमने तो देखा है कलियों को
सदा मुस्कुराते हुए–
काँटों के बीच रहकर भी
हँसते हुए, खिलखिलाते हुए–
शायद तुमने देखा नहीं
अश्क उनकी आँखों में–
भोर के वक्त क्या नहीं रहतीं?
ओस की बूँदें उनकी पाँखों पे–
ये बूँदें ही उनकी आँखों का पानी हैं
आँसू पी पीकर मुस्कुराना
यही उनकी कहानी है।

तुम तो चाहते हो
अपनी झोली को
भरते ही रहना सदा
जिधर से भी हो, जहाँ से भी हो
लेकिन इक पात्र में
ले पाओगे जल
उतना ही
सागर से लो या कुआँ से ही लो
अगर कुछ और पाने की चाहत है
कुछ चीजें तुम्हें गँवानी होंगी,
आखिर कुछ भी रखने को
झोली में जगह बनानी होगी।

इसलिए ऐ दोस्त मेरे,
रख याद सदा, मेरा ये कहा–
जिन्दगी में मुस्कुराने के लिए रोना भी जरूरी है।
जिन्दगी में कुछ पाने के लिए खोना भी जरूरी है।

❖❖❖

क्या है मेरी पहचान

- वंदना फार्मा

झरते पत्तों को सैलाब की तरह –
उसी तरह कभी जिंदगी बिखर जाती है,
और समेटना मु कल हो जाता है
अब हर किसी के पास तो–
हुनर होता नहीं।
गिरते पत्तों को लपक ले
गिरने से पहले ,
वो पत्ता भी कहाँ जानता है अपनी किस्मत ,
जिस भाख से टूटा,
और अंजाम की फितरत,
कभी पहुँच जाता है कोई अंजाम तक,
तो किसी को रास्ता ही नहीं मिलता।
कभी–कभी मैं बहुत सोचती हूँ,
क्यों सोचती हूँ, पता नहीं।
नहीं चाहती सोचना कुछ भी ,
पर बहुत सोचती हूँ।
एक अजीब सी बेचैनी–
नहीं रहने देती मुझे भांत
कुछ जाने–अनजाने प्र न–
कर देते हैं तबाह मेरा सुख–चैन।
ढूँढ़ती हूँ उनके जवाब –
पर नहीं आता कभी–कभी।
समझ में कि आखिर,
क्या है मेरी पहचान
इस समाज और अपने दे ा के
हालातों से नहीं रह सकती अनभिज्ञ
मैं कवि हूँ ना।
तो मेरा फर्ज है इन सबके बारे में सोचना ।
पर मैं चाहकर भी तो बदल नहीं सकती,
इन हालातों को और इन्हीं सब सवालों को
सोचते हुए,
चली जाती हूँ खुद से दूर–
बहुत दूर।
और रह जाता है फिर एक
अधूरा प्र न?
क्या है मेरा होना
क्या है मेरी पहचान?

❖❖❖

जिंदगी की जंग हार जाओगे।

- नीता

न खींचो लक्ष्मण–रेखाएँ
क्योंकि तुम्हीं लाँघ न पाओगे
मैं तो अशोक वाटिका में भी रह लूँगी
फिर मुझ तक पहुँचने को
बड़े ही जतन से
आदम पुल भी तुम ही बनाओगे।

आखिर कितनी बार और
दूसरों के बहकावे में आकर
तुम मुझे अग्नि से नहलाओगे?

कभी वर्जनाओं का हवाला देकर
तो कभी मर्यादा का नकाब पहनकर
और कितनी बार तुम
मेरे सच को झुठलाओगे?
लाजिमी है कि अब
मैं इनकार करूँ।

युग बदला है रे राघव!
अब तुम भी खुद में बदलाव लाओ,
क्योंकि यदि मैंने ठान लिया
तुम्हारे सत् की परीक्षा लेना,
तो तुम खरे न उतर पाओगे
और पहले ही कदम पर
जिंदगी की जंग हार जाओगे।

❖❖❖

नीति के दोहे

– नरेंद्र दीपक

ज्योंही मन में प्रेम की उड़ने लगी पतंग।
बिखर गए आकाश में इंद्रधनुष के रंग।।

दीपक ने दोहे लिखे, दोहों की भरमार।
हर दोहा, दुहरा रहा, सिर्फ प्यार ही प्यार।।

कुछ भी कहने के लिए, पहले मन को तोल।
समझ–बूझ ले ठीक से, फिर बंदे तू बोल।।

सब है राम–रहीम का, अपना क्या है यार।
ढाई आखर से गढ़ा, छोटा सा संसार।।

दोहों में पैदा करो, ऐसी कुछ तासीर।
जैसी यारो कर गए, फक्कड़ संत–कबीर।।

पागल–पागल मिल गए, पगलों का संसार।
इसको पागल कर गया, उस पागल का प्यार।।

सेलफोन पर साँस ली, उसको क्या अंदाज।
इतना शोर मचाएगी, बिन बोली आवाज।।

बिन बोले बातें करें, कौन चीज है यार?
या तो उसकी दृष्टि है या फिर उसका प्यार।।

आँख बचाकर आँख ने पल भर लिया निहार।
तब से मन के मंच पर, बजने लगा सितार।।

❖❖❖

ओ शिखर पुरुष

- अंजू शर्मा

ओ शिखर पुरुष,
हिमालय से भी ऊंचे हो तुम
और मैं दूर से निहारती, सराहती
क्या कभी छू पाऊँगी तुम्हे,

तुम गर्वित मस्तक उठाये
देखते हो सिर्फ आकाश को,
जहाँ तुम्हारे साथी हैं दिनकर और शशि,
और मैं धरा के एक कण की तरह,
तुम तक पहुँच पाने की आस में
उठती हूँ और गिर जाती हूँ बार बार,

उलझी हैं मेरे पावों में
कई बेलें मापदंडों की,
तय करनी हैं कई पगडंडियाँ मानकों की,

अवधारणाओं के जंगलों से गुजरकर,
मान्यताओं की सीढ़ी चढ़कर,
क्या कभी पहुँच पाऊंगी तुम तक,
या तब तक तुम हो जाओगे
आकाश से भी ऊँचे

यदि गिर गयी मैं किसी
गहरी खाई में
क्या दोगे अपना हाथ मुझे सँभालने को
या मेरे मुख पर लगी कालिख
लौटा देगी तुम्हे,
फिर उन्ही ऊंचाइयों पर

जहाँ तुम देवता हो और मैं दासी,
क्या तुम्हारे चरण बनेंगे कभी हस्त,
जो छुएंगे मेरी देह को
केवल एक संगिनी की तरह

और मिट जायेगा देवता और दासी का फर्क,
तब तुम और मैं एक धरातल पर,
रचेंगे नयी सृष्टि बिना किसी सेब के,
और मानको और मान्यताओं की
राह पर संग विचरेंगे हम तुम,

और तुम मेरे एक हाथ को थामे,
हटाओगे उन मापदंडों की बेलों को
जो आज तक सिर्फ मेरे पावों के लिए थीं

❖❖❖

बुद्धि

– गोपेश शरण शर्मा 'आतुर'

बुद्धि तू दुर्बुद्धि से लड़ती नहीं है,
मार्ग में इसके तनिक अड़ती नहीं है।

लाभ क्या होगा तुझे चिंता नहीं है,
मनुजता को अब समय गिनता नहीं है।

नित अनेकों खोज करते आ रहे हैं,
आदमी उस ओर दौड़े जा रहे हैं।

बाद में उनकी बताते हानियाँ हैं,
इक कहानी नहीं बहुत कहानियाँ हैं।

आज भी विस्फोट करते जा रहे हैं,
व्यर्थ रचना ध्वंस करते जा रहे हैं।

लाभ क्या होगा नहीं तू सोचती है,
मनुजता का व्यर्थ खिलना रोकती है।

कार्बन क्यों वायुमंडल में घुला है,
पेड़ कम, भूजल रसातल को चला है।

उग्र वैश्विक ताप पिघले ग्लेशियर हैं,
छोड़ता मर्याद सागर, दिक नगर हैं।

इसलिए कुछ यत्न कर सद्बुद्धि आए,
प्रार्थना कर वह नियंता जग बचाए।

❖❖❖

यादों के दर्पण में मेरे

- त्रिभुवन माहेश्वरी

मुश्किल से दुनिया में मिलते–
मन को मीत बनाने वाले।
बड़े जतन से पाल रखें हैं,
दिल का दर्द पाँव के छाले।

राजमार्ग ठुकरा पग मेरे,
पगडंडी की ओर मुड़े हैं।
मीत–मीत के शब्द–शब्द से,
जीवन के संदर्भ जुड़े हैं।

टूट गईं फौलादी कसमें,
सपनों को वनवास मिल गया।
तम ने नहीं मुखौटे बदले,
छल–बल साथ उजास मिल गया।

अनजानी आँखों में सहसा,
कभी किरकिरी पड़ जाती है।
सीधी–सच्ची बात शूल सी,
कभी हृदय में गड़ जाती है।

प्यार नहीं प्रतिदान माँगता,
उपालंभ चुपचाप सह लेता।
प्रतिवादी बनने से पहले,
मन की बातें मन कह लेता।

पीठ फेर ली है बहार ने,
साँसें अब तक सुरभीनी हैं।
ऐसा कुछ घट गया कि जिससे,
मन उदास आँखें गीली हैं।

यादों के दर्पण में मेरे,
रूप किसी का अब भी हँसता।
मन–मंदिर की मूर्ति न टूटी,
मंत्र अर्चना के मैं जपता।

❖❖❖

ये समय है

ध्रुव शुक्ल

ये समय है....
बोलने का समय है
खुलेआम
भेद खोलने का समय है

लोग शोर में जिन्दगी गुजारने लगे हैं
शोर मचाकर चुप रहना सीख जाते हैं
बोलना बेकार हो जाता है
लोग बोलना बन्द करते जा रहे हैं
तभी तो बोलियां मिटती जा रही हैं
गोलियों की आवाज बढ़ती जा रही है

ये बेखबर रहकर जीने का नहीं
समझकर बोलने का समय है
ये शैतान से संवाद का समय है
हैवान से जेहाद का समय है

ये किसी के बचने का नहीं
इसीलिए सबको बचाने का समय है
ये समय काम आ जाए तो बहुत अच्छा
न आए तो फिर सबके मिट जाने का समय है

❖❖❖

मन कहता कुछ गीत लिखूँ...

- विजय रंजन

मन कहता कुछ गीत लिखूँ, मैं,
गीत के नाम, अगीत के नाम।
जीवन के संगीत लिखूँ मैं,
हार के नाम या जीत के नाम।

दूर कहीं महुआ बन महके,
फिर पलाश के जंगल दहकें।
रतनारे कजरारे नयना,
आज लगे कुछ बहके–बहके।
नयनों की अनुभूति लिखूँ मैं,
रीति के नाम, अरीति के नाम।

टूटे–जुड़ें, जुड़े–टूटे से,
राह–ब–राह कहीं छूटे से।
अभिलाशा के कुँवारे सपने,
मान मनौवल में रूठे से।
सपनों से परतीति लिखूँ मैं,
प्रीति के नाम, प्रतीति के नाम।

सुख सब, बासी फूल हो गए,
नेह, गली की धूल हो गए।

बार–बार इतिहास चेताए,
रिश्ते बाँस, बबूल हो गए।
रिश्तों को मनमीत लिखूँ मैं,
मीत के नाम, अतीत के नाम।

❖❖❖

गोधूली की मधुवेला में

- धीरेद्र प्रसाद सिंह

जाता रे! दिन कटता जाता
आसमान के नीचे,
रह जाती स्मरण की छाया
जिसके अमिट सहारे जीते!

यादें रह गईं धूमिल सी
सोच नहीं पाता है मन,
मन तो सब सँजोए रखता
तन करता रहता भ्रमण!

वृक्षों की कतारें
वैसी ही रह गई हैं
जल का शिथिल किनारा
दृढता से निशान बनें हैं
मूकदर्शक की तरह पड़ें हैं!

मनुश्य का क्षणिक इतिहास–
सिमट जाता है भूत भविष्य में,
लेकिन मूक पेड़ की कतारें
छिपा लेती उन्हें मनोहारी दृश्य में।

खो जाता है होश हमारा
मिट जाते कश्टों के धूप,
समय चला जाता
हम भी चले जाते,

❖❖❖

एकात्म मानव

- इंदुशेखर

एकात्मवाद के मंगलपथ पर, मानव का कल्याण है,
अखिल विश्व को यह भारत के चिंतन का वरदान है।
मनुज मात्र की गरिमा कुंठित हो न किसी भी तंत्र से,
सामाजिक समरसता खंडित हो न व्यक्ति स्वातंत्र्य से।
धर्माधारित हों समाज में अर्थ–काम के नीति–नियम,
प्रकृति के प्रति नतमस्तक हो, भोग करें रखकर संयम।
व्यक्ति–समाज–सृष्टि–परमेश्वर से यह रचित विधान है।
एकात्मवाद के मंगलपथ पर

धनी–दरिद्री, ज्ञानी–मूरख, गोरे–काले, उच्च–अधम,
सबकी अपनी–अपनी सत्ता, कोई किसी से क्योंकर कम।
सब समश्टि के अंगभूत, सबका अधिकार बराबर है,
कर्मयोग से कोई अधिपति, कोई सेवक–चाकर है।
सारे मानव परम ब्रह्म की, सर्वश्रेष्ठ संतान हैं।
एकात्मवाद के मंगलपथ पर.

जाति, पंथ, भाषा से निर्मित राष्ट्रीयता कृत्रिम है,
राज्यतंत्र की सीमाएँ भी, अंतिम नही अंतरिम हैं।
राष्ट्र सनातन सत्ता है, संस्कृति उसकी निर्माता है,
जन्मभूमि, जन, परंपरा से इसका गहरा नाता है।
भारत की यह राष्ट्र कल्पना विश्व शांति का प्राण है।
एकात्मवाद के मंगलपथ पर.

तेरे सुख में मेरा सुख है, अपना सुख सबके सुख में,
काँटा अगर पैर में चुभता, आँखें भर आती दुःख में।
भोजन का रस लेती जिह्वा, पोषित होते हैं तन–मन,
तन की इस एकात्मता से संचालित सारा जीवन।
यही सनातन सत्य जगत् का, यही आत्मविज्ञान है।
एकात्मवाद के मंगलपथ पर

उद्‌गम अलग–अलग नदियों के अलग–अलग हैं पंथ–प्रवाह,
चलते–चलते पा लेतीं सब, महासिंधु की दुर्गम थाह।
विविध रूप में झलक रहा वह एक तत्व अविनाशी है,
इसीलिए संघर्ष, द्वंद्व सब, मिथ्या है, आभासी है।
यही अखंडित हिंदू–दृष्टि है, यही सत्य संधान है।
एकात्मवाद के मंगलपथ पर, मानव का कल्याण है,
अखिल विश्व को यह भारत के चिंतन का वरदान है।

❖❖❖

दिन कटे हैं धूप चुनते

अवनीश त्रिपाठी

रात कोरी कल्पना में
दिन कटे हैं धूप चुनते

प्यास लेकर
जी रहीं हैं
आज समिधाएँ नई
कुण्ड में
पड़ने लगीं हैं
क्षुब्ध आहुतियां कई

भक्ति बैठी रो रही अब
तक धुंए का मन्त्र सुनते

छाँव के भी
पाँव में अब
अनगिनत छाले पड़े
धुन्ध–कुहरे
धूप को फिर
राह में घेरे खड़े

देह की निष्ठा अभागिन
जल उठी संकोच बुनते

सौंपकर
थोथे मुखौटे
और कोरी वेदना
वस्त्र के
झीने झरोखे
टांकती अवहेलना

दुःख हुए संतृप्त लेकिन
सुख रहे हर रोज घुनते

❖❖❖

पहाड़ी के पत्थर

- अनिल मिश्र

हवा दिशा बदलती है और पानी अपने रास्ते
इन पत्थरों पर बैठकर
आसमान अपने कपड़े बदलता है

लाखों वर्षों से निश्चल निर्विकार पड़े
एक विशाल शिलाखंड पर
कभी–कभी आती है एक थकी उड़ान
और छोड़ जाती है कोई टूटा हुआ पंख
अपनी कमर में डलिया बांधे स्त्रियां आती हैं
और आंसुओं से तर कर जाती हैं
पहाड़ी की छाती
उनके साथ आते हैं बच्चे
और लगातार कुछ समझाते रहते हैं पत्थरों को
कभी–कभी आता है हारा हुआ प्रेम
और किसी शिला के सीने से लिपट कर
बहुत रोता है

जिस में घुस नहीं पाती
लोहे की नुकीली छेनी
उन्हीं प्रस्तरों को चीरती
घुसती जाती है
कोमल पौधे की मुलायम जड़

❖❖❖

जीवन बीत गया

- राजेन्द्र वर्मा

जीवन का संकल्प धरा–का–धरा रह गया है,
बातों–ही–बातों में मेरा जीवन बीत गया।

पनघट–पनघट भटका लेकिन,
प्यास न बुझ पायी,
एकाकी समाधि भी मुझको
रास नहीं आयी।
कुंभ सुधा का भरा हुआ था, रिस कर रीत गया।
बातों–ही बातों में मेरा जीवन बीत गया।।
सत्य कहूँ तो मैंने
जीवन–गीत नहीं गाया,
जबकि निरन्तर रही संगिनी
तालबद्ध काया।
कृत्रिमता के लिए छूट प्राकृत संगीत गया।
बातों–ही बातों में मेरा जीवन बीत गया।

चाहा था घर एक मिले,
पर मिली मुझे कारा,
हार मृत्यु से होती है,
मैं जीवन से हारा।
मैं ऐसे हारा, मेरा मन मुझसे जीत गया।
बातों–ही बातों में मेरा जीवन बीत गया।।

❖❖❖

तुम जाने-पहचाने

- भीम प्रसाद प्रजापति

भूख प्रबल कितनी थी
मौजूद सुरों से
असुरों सा व्यवहार किया,
मन में छिपी हुई वेदना
घास की रोटी का आहार किया,
भूख प्रबल कितनी थी!

नित नए गढ़े सपने जिसने,
तोड़ा रण में उसने–उसने।
खा अहंकार का बीड़ा,
तन–मन से इन्कार किया।
भूख प्रबल कितनी थी!

क्रंदन मन में ठनक रहे,
योद्धा जितने जनक रहे।
अश्रुधारा में बह गए,
फिर मातृभूमि से प्यार किया।
भूख प्रबल कितनी थी।

था, सीने में दंभ जिसे,
पत्थर की तरह वो रहे घिसे।
साँसों की लहरी जब तक,
तलवारों से संहार किया,
भूख प्रबल कितनी थी!

❖❖❖

बार-बार बदला लेंगी।

- शैलेंद्र कुमार भाटिया

आसमान से टपकती पानी की बूँदें–
मिटाती हैं, चिड़ियों की प्यास ।
उपजे फुनगियों की प्यास, और –
इस धरा की प्यास।
धरा इन बूँदों को अपने कंठ–
में रखती है, बचाकर
अपनों के लिए।
अपने इन बूँदों को खोदकर, बोर कर,
पाईप से निकालकर पीते और सींचते हैं मनचाहा।
अपनी जरुरतों से
ज्यादा बहाते ये मनुश्य
अब चिल्ला रहे हैं, इन बूँदों के लिए।
ये बूँदें अब बदला ले रही हैं,
अपने ऊपर हुये दोहन के विरुद्ध खड़ी ये बूँदें,
अब कंठ से बहुत दूर चली गई हैं,
इनके जाने से धरा की त्वचा सूख गई है,
उसमें दरारें पड़ने लगी हैं
ये दरारे भी अब किसान की दरारें
बनने लगी हैं,
यों बूँदें रो रही हैं, रुला रही हैं,
बूँदों ने यात्रा भी शुरु कर दी है,
कंटेनरों में भरकर पटरियों पर दौड़ रही हैं,

ये बूँदें अब भी रहना चाहती हैं पास
आओ आसमान से टपकती इन बूदों को
सँजो लें, संरक्षित कर लें, सँभाल लें
कल के लिए नहीं तो पानी की ये बूँदें
बार–बार बदला लेंगी।

❖❖❖

कल बीत गया मत याद करो।

- कृष्ण कुमार वर्मा

कल–कल झरने का स्वर कहता,
कल बीत गया, मत याद करो।
आने वाला कल उत्तम हो,
इसका तुम सतत् प्रयास करो।
अविरल गति में कल मुझे स्वयं,
अनुसरण हमारा आज करो।
औरों के लिए छोड़ स्मृति,
आगे बढ़ने की चाह करो।
कल्पित युग बीत गये अगणित,
कल पड़ी न कल की चाह करो।
कल का भी नहीं भरोसा कुछ,
कल करना है सो आज करो।
तुम विकल आज क्यों हे मानव,
मानवता का कुछ मान करो।
कल पाना हो यदि जीवन में,
मानवता के कुछ काम करो।
कहता कल युग गति का प्रतीक
आतुर मन गति अभिवृद्धि करो।
कल की ही भाँति अथक श्रम से,
अपने कार्यों की सिद्धि करो।
संतोश रोश संकोच त्याग,
धुन के पक्के बन काम करो।
पाया जो जन्म सार्थक हो,
करनी के बल पर नाम करो।
सम्मुख हो लक्ष्य, गिरो फिर भी,
उठ बढ़ो न किंचित आह करो।
कल–कल–कल–कल स्वर गूँज पड़ें,
संकल्प सहित उत्साह भरो।

❖❖❖

अजित कुमार

जन्म - 09 जून 1933, निधन - 19 जुलाई, 2017

गीत जो मैंने रचे हैं,
वे सुनाने को बचे हैं।
क्योंकि–
नूतन जिन्दगी लाने,
नई दुनिया बसाने के लिए
मेरा अकेला कंठ–स्वर काफी नहीं है।
इस तरह का भाव मुझ को रोकता है।
शून्य, निर्जन पथ, अकेलापन
सभी कुछ अजनबी बन
मुखरता मेरी न सुनता
टोकता है।
इसलिए मुझ को न पथ के बीच छोड़ो
बेरुखी से मुँह न मोड़ो,
हो न जाऊँ बेसहारे,
इसलिए तुम भूलकर वैषम्य सारे दृष्य
तालुदृसुरदृलय का नया सम्बन्ध जोड़ो।
ओ प्रगतिपन्थी।
जरा अपने कदम इस ओर मोड़ो।

सृजन स्मरण

पदुमलाल पन्नालाल बख्शी

जन्म - 27 मई 1894, निधन - 18 दिसम्बर 1971

भाव रस अलंकार से हीन, अर्थ–गौरव से शून्य असार।
नाम ही है वस जिनमें, पद्य ये हैं ऐसे दो–चार।
बिल्व पत्रों का शुष्क समूह, कब किसी से आया है काम,
उन्हीं से होता जग को तोष तुम्हारा हो यदि उन पर नाम।
लिख दिया है बस अपना नाम और क्या है लिखने की बात?
नाम ही एकमात्र है सत्य और है नाथ! वही पर्याप्त,
पड़ेगी जब तक जग की दृष्टि, रहेंगे तब तक क्या ये स्पष्ट?
किन्तु तुम तो मत जाना भूल, नाम का गौरव हो मत नष्ट।